Volume - 4 (2023)
Special Issue - 2 (April)
RESEARCH HUB
International Peer-Reviewed Multidisciplinary E-Journal
ISSN 2582-9173
Website : www.researchhub.org.in/research-hub !! Email : researchhubjournal@gmail.com

स्त्री-अस्मिता और सशक्तीकरण के प्रश्न

डॉ. सुमित सिंह
सहायक प्राध्यापक
स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, रा.तु. म.नागपुर विश्वविद्यालय
Email Id - Sumithindi.singh@gmail.com

सारांश -

'स्त्री-अस्मिता' एक व्यापक संकल्पना है जिसके तहत प्रत्येक महिला को उसकी शारीरिक और बैद्धिक क्षमता के विकास, प्रदर्शन और प्रयोग पर पूरी आधिकारिता प्राप्त है। वस्तुतः 'स्त्री-अस्मिता' महिला-सशक्तिकरण से जुड़ा सीधा प्रश्न है, जिसमे महिलाओं को पुरुषों के समकक्ष राजनैतिक, वैधानिक, मानसिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में अपने परिवार, राष्ट्र और संस्कृति की पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वायत्तता शामिल है। महिलाओं को उनका सही स्थान पाने के लिए सबसे पहली शर्त यह होगी कि उन्हें समानता के धरातल पर 'न्याय' उपलब्ध हों, यथार्थ के धरातल पर समानता स्थापित हों। तभी विश्व की 'आधी आबादी' समाज के, देश के, विश्व के प्रभावी विकास में अपना अमूल्य योगदान कर पायेगी। अन्यथा शासन-सत्ता, देश-दुनिया महिलाओं की असमान दशा को दूर करने के लिए चाहे जितने भी नियम-कानून बना ले, बौद्धिक-विमर्श कर ले, लेख लिख ले, जोशीले नारे लगा लें, कुछ भी सकारात्मक परिवर्तन नहीं आएगा। स्त्री न कभी स्वतंत्र व्यक्ति की तरह पहचानी जाती है और न कभी वह खुद पर अपना अधिकार भाव रख सकती है। इस तरह स्त्री का एक पराधीन वस्तु होना उसकी अंतिम नियति मानी गयी, जिसके विरुद्ध स्त्री-स्वातंत्र्य का संघर्ष शुरू हुआ। प्रश्न उठाया जा सकता है कि परम्परागत मूल्यों वाले भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के बीच मानवीय स्वतंत्रता को स्थान कैसे दिया जा सकता है अथवा दिया भी जा सकता है या नहीं? महिलाओं के प्रति अपराध, हिंसा या किसी प्रकार का अत्याचार किसी भी देश की समानताए विकास और शान्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने के मार्ग में बाधा है, अर्थात् किसी भी देश या समाज में शान्ति तभी रह सकती है, विकास तभी हो सकता है जब महिलाओं का विकास हो, उनके साथ न्याय व समानता की बात हो। ये सब तभी सम्भव है जब समाज में रहने वाले सभी मनुष्यों के अधिकारों की सुरक्षा हो और मानवाधिकारों की स्थापना हो।

बिज शब्द - *अस्तित्व, अस्मिता, मानवीय स्वतंत्रता, सशक्तीकरण, समानता,*

स्त्री न कभी स्वतंत्र व्यक्ति की तरह पहचानी जाती है और न कभी वह खुद पर अपना अधिकार भाव रख सकती है। इस तरह स्त्री का एक पराधीन वस्तु होना उसकी अंतिम नियति मानी गयी, जिसके विरुद्ध स्त्री-स्वातंत्र्य का संघर्ष शुरू हुआ। प्रश्न उठाया जा सकता है कि परम्परागत मूल्यों वाले भारतीय समाज में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों के बीच मानवीय स्वतंत्रता को स्थान कैसे दिया जा सकता है अथवा दिया भी जा सकता है या नहीं? महिलाओं के प्रति अपराध, हिंसा या किसी प्रकार का अत्याचार किसी भी देश की समानताए विकास और शान्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने के मार्ग में बाधा है, अर्थात् किसी भी देश या समाज में शान्ति तभी रह सकती है, विकास तभी हो सकता है जब महिलाओं का विकास हो, उनके साथ न्याय व समानता की बात हो। ये सब तभी सम्भव है जब समाज में रहने वाले सभी मनुष्यों के अधिकारों की सुरक्षा हो और मानवाधिकारों की स्थापना हो। किसी भी देश

की स्थिति को उस देश में महिलाओं की दशा से जाना जा सकता है। ।''भारतीय महिलाओं की इस ललक के पीछे सबसे बड़ा कारक देश की तेजी से बढ़ती हुयी अर्थव्यवस्था है जिसने समाज में बड़े बदलाव की शुरूआत की। इन चीजों को देखते हुये विशेषज्ञों का मानना है कि अगर भारतीय महिलाओं सहयोगर्पूण कामकाजी माहौल, समान अधिकारिकता, विकास के पर्याप्त एंव समान अवसर और परिवार एंव दफ्तर की जिम्मेदारियों को निभाने के लिये एक उदारव्यवस्था दे दी जाय तो वे और भी बेहतर कर सकती है।।''[1] इसके साथ ही यह भी देखना होगा कि स्त्रियों के राजनीतिक रूप से सशक्त होने पर उनके सामाजिक स्तर पर क्या कोई असर होता है, अगर होता है तो किस तरह? वर्तमान यथार्थ की तस्वीर यहाँ थोड़ी सी हटकर है। दिल्ली हो उत्तर प्रदेश, बिहार हो या तमिलनाडु, सत्ता में शीर्ष पर आसीन होने के बाद भी वहाँ की महिलाओं के जीवन स्तर को सुधारने के लिये कोई अलग से विशेष प्रयत्न तो नहीं किये गये। जब कोई महिला कहीं भी मुख्यमंत्री, प्रधानमंत्री आदि बनती है तो स्वाभाविक है कि समस्त स्त्री-समुदाय बहुत आशा भरी दृष्टि से उसकी ओर देखती है, और अन्ततः स्वयं को छला हुआ पाती है। पंचायतों में स्त्रियों के प्रवेश ने एक छोटी सी ही सही पर आशा की किरण जगायी है। गाँवों की तस्वीर थोड़ी बदली जरूर है। इसे राजनैतिक ताकत की पहली सीढी माना जा सकता है, यहीं से स्त्रियों को सम्भलने की भी जरूरत है और समाज को स्वयं को बदलने की। आजकल प्रधानपति, सरंपचपति शब्द चल रहा है। मीटिंग्स में जाने तथा फैसले लेने का काम महिला का पति करता है क्योंकि यहाँ स्त्री बिना मानसिक तैयारी के आयी है। माना कि यह सही नहीं है पर इसे पहले चरण की व्यावहारिक कटिनाई के रूप में देखना चाहिये। ये दिक्कतें भी धीरे-धीरे दूर होंगी। आखिरकार जो गाँव-समाज स्त्री को घर की छत पर नहीं जाने देता था, उसने कम से कम इतनी उदारता तो बरती है । जैसे-जैसे स्त्रियों में शिक्षा बढेगी, उनका आत्मबल बढ़ेगा वैसे-वैसे ही इन प्रधानपतियों और सरपंचपतियों की संख्या कम होगी। क्योंकि स्त्रियों को जिस क्षेत्र में भी काम करने का अवसर मिलता है, वहाँ वह अपने आप को पुरुषों से कहीं बेहतर साबित करती है। वर्तमान परिवेश को देखा जाय तो स्त्रियाँ पुरुषों के मुकाबले ज्यादा बदल रही है। घरेलू जीवन से बाहर आकर सार्वजनिक जीवन में स्वयं को साबित कर रही हैं परन्तु पुरुष सार्वजनिक जीवन के साथ घरेलू जीवन में आने से अभी भी कतरा रहे हैं। यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं है कि ''आधुनिक समाज में पहले की अपेक्षा स्त्री के लिये अधिक अनुकूल परिस्थितियाँ मिलती है, किन्तु आज भी उसको अपना पहला कदम सामाजिक विद्वेष के बीच ही उठाना पड़ता है।''[2] स्त्री के प्रति अपराध की समस्या कोई नई समस्या नहीं है। भारतीय समाज में महिलायें इतने दीर्घ काल से अवमानना, यातना और शोषण का शिकार हो रही हैं जितने काल के हमारे सामाजिक संगठन और पारिवारिक जीवन के लिखित प्रमाण उपलब्ध हैं। स्त्री के प्रति होने वाले अपराधों की परम्परा-सी रही है।

जवाब यही है कि स्त्री शिक्षित हुयी है पर सशक्त नहीं। स्त्री की देह से जुड़े फैसले उसके नहीं होते। तो क्या शिक्षित स्त्री के अपने फैसले स्वयं लेना एक झूठ है जो समाज में प्रचारित किया गया है। ''प्रश्न यह है कि क्या औरतें अपने-अपने जीवन से इतनी दुखी होती हैं कि भय के कारण किसी नयी कन्या का अवतरण ही नही चाहती?''[3] मूलतः शिक्षा सोच को बदलने के लिये जरूरी हथियार है। शिक्षा स्त्री को तब बदलती है, जब उसके आसपास का माहौल उसकी शिक्षा को उसके कॅरियर और उसके कैरियर को उसके आत्मसम्मान से जोड़कर देखना सिखाता है। वर्तमान में स्त्री जगत में एक नयी बात सामने आ रही है, अपने प्रति होने वाले अत्याचारों के बारे में खुलकर अपनी बात रखना। '' सबके सामने इस तरह की बातें बताने का एक मतलब है, वो यह कि न सिर्फ

अपनी बल्कि तमाम औरतों की चुप्पी को आवाज देना। यह हौसला देना कि अब कम से कम बिना लोकलाज और बिना इज्जत गँवाने के भय से बात की जा सकती है। यह एक बहुत बड़ा बदलाव है।''[4]

मानव-मूल्यों में सबसे ऊँचा मूल्य न्याय और प्रेम का है। सबसे अधिक अवमूल्यन भी इन्हीं दोनों मूल्यों का हुआ है। जीवन के मूल्यों और मानद डों में परिवर्तन के फलस्वरूप वर्तमान समाज में अन्तर्विरोध की स्थितियाँ पैदा हो गयी हैं। समाज दोहरी मानसिकता में जी रहा है। मानवीय दृष्टि से प्रेम और विवाह के लिये धर्म, जाति, धन-सम्पति कोई मानद ड नहीं होना चाहिये। आज शिक्षित होने के बाद वे हत्यायें करने लगे हैं। यह मूल्यों के पतन की चरम सीमा है।''[5] ''माता-पिता के अपने सन्तान के सम्बन्ध में निर्णय लेने के एकमात्र अधिकार का महत्व उस समय अधिक महत्वर्पू ण तथा औचित्यर्पू ण था जब समाज में पर्दाप्रथा एवं बालविवाह जैसी कुरीतियाँ व्याप्त थी। अव्यस्क, अशिक्षित एवं सामाजिक क्रियाकलापों से अपरिचित तथा कुरीतियों से लड़ने में अक्षम स्त्रियां उचित र्निणय लेने में असमर्थ थीं। परन्तु वर्तमान में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों में महत्वर्पू ण परिवर्तन आया है। स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ है, वे अपने भविष्य की योजना तथा विवाह का स्वतन्त्र र्निणय लेने में सक्षम हुयी हैं।

स्त्री-अस्मिता वास्तव में है क्या ? एक स्त्री का अस्तित्व, उसकी अपनी पहचान। उसका यह अस्तित्व, उसकी यह पहचान समाज में किसके द्वारा तथा किन मापदंडों द्वारा और कैसे निर्धारित की जायेगी ? क्या उसका मूल्यांकन स्वयं स्त्री करेगी या फिर पुरुष या दोनों मिलकर करेंगे ? यदि स्वयं स्त्री अपनी अस्मिता स्थापित करती है तो वह एक हद तक सही है, किन्तु यदि पुरुष उसकी अस्मिता का मूल्यांकन करेगा तो निश्चय ही उस अस्मिता का कोई अस्तित्व नहीं रह जाएगा। क्योंकि पुरुष के द्वारा नारी का चरित्र अधिक आदर्श बन सकता है, परन्तु अधिक सत्य नहीं, विकृति के अधिक निकट पहुंच सकता है, यथार्थ के अधिक समीप नहीं। इस सन्दर्भ में महादेवी वर्मा के वक्तव्य को उदधृत करना समीचीन प्रतीत होता है कि- "हमें न जय चाहिए, न किसी से पराजय; न किसी पर प्रभुता चाहिए, न किसी का प्रभुत्व। केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परन्तु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी। हमारी जागृत और साधन संपन्न बहिनें इस दिशा ने विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकेंगी, इसमें सन्देह नहीं।"[6]

'स्त्री-अस्मिता' के प्रश्न पर समाज के विभिन्न घटकों के मध्य व्यापक आवर्त एवं जटिलताएं विद्यमान है। भले ही स्त्री-पुरुष दोनों उत्पत्ति के समय से एक-दूसरे के पूरक रहे हों और विश्व परिदृश्य में दोनों समाज की सर्वसम्मत इकाइयाँ हों, किन्तु वर्तमान समय में दोनों का स्वतंत्र अस्तित्व एवं अस्मिता कहीं भी नज़र नहीं आती। जब भी समाज में स्त्री की अस्मिता या सशक्तिकरण का जिक्र होता है तो- 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देवता' जैसी कुछ सूक्तियों को गिनाकर नारी का गुणगान कर दिया जाता है और इन्हीं उदाहरणों के तहत नारी भी अपने अधिकारों को सुरक्षित समझ लेती है। यही कारण है कि व्यवहार रूप में एक पक्ष ज्यादा शक्तिशाली दिखाई देता है, जब कि दूसरा पक्ष शोषित।जब कि होना यह चाहिए कि समसामयिक परिस्थितियों के अनुसार किसी की स्थिति-परिस्थिति का निर्धारण हों। सुदेश बन्ना के शब्दों में कहे तो –"स्वतंत्रता के पश्चात् परिवर्तित सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों में महिलाओं की शिक्षा, रोजगार के अवसरों और समानता के अधिकारों में काफी वृद्धि हुई है, फिर भी प्रतिगामी नैतिकताओं, मान्यताओं, मूल्यों और सामाजिक मानसिकता के कारण अनेक विसंगतियों ने

नारी जीवन पर दोहरे मानदंडों को लागू किया है।"[7]

वस्तुतः स्त्री का संघर्ष सिर्फ आज से नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण अतीत से है। अतीत से लेकर वर्तमान तक स्त्री को बचपन से ही ऐसी मानसिकता में लालन-पालन किया जाता है कि जहाँ वह बिना कोई विरोध किए हर जुल्म, हर किस्म के अमानवीय व्यवहार से तालमेल बैठाकर सभी को खुश रखती है। जब कि स्त्री-अस्मिता और सशक्तिकरण का विचार दोनों की समानता पर आधारित है, जो समाज में प्रत्येक स्तर पर लैंगिक समानता की अपेक्षा रखता है तथा किसी भी तरह के भेदभाव का विरोध करती है। "सदियों से औरत को मारने, उसे प्रताड़ित करने, उसके साथ बलात्कार करने या उसे नीचा दिखाने अथवा रखने के कई सारे बहाने, तरीके और परम्पराएँ बना ली गई हैं जो आज के पढ़े-लिखे सभ्य कहे जाने वाले आधुनिक समाज में भी न सिर्फ ज्यों की त्यों उपस्थित हैं बल्कि और ज्यादा मजबूत तथा कट्टरता के साथ सामने आ रही हैं।...महिला श्रम या नौकरी का मुद्दा हो या शिक्षा साक्षरता का, सबमें महिला भेदभाव और शोषण की शिकार है।"[8] इस प्रकार नारी-व्यथा और संघर्ष के आलोक में मानव समाज का अब तक का इतिहास स्त्रियों को समता, सत्ता, प्रभुता एवं शक्ति से दूर रखने का इतिहास है। "सामाजिक-आर्थिक क्षेत्रों में नारी की सक्रिय भागीदारी को न केवल उसके भय व संकोच को दूर किया, बल्कि अपनी स्थिति के प्रति स्वतंत्र निर्णय क्षमता के विकास व विरोध के चिंतन को बढ़ावा दिया। अपने श्रमकार्य एवं उत्पादन की गुणवत्ता की समझ के साथ ही उसके मूल्य के प्रति भी उसका आग्रह बढ़ा है। यह पुरुष प्रधान समाज के सामंती संस्कारों के प्रति विद्रोहपरक होते हुए भी दयनीय और समझौतापरक रहा है। उसने अपनी नैसर्गिक प्रवृतियों और संस्कारों के दबाव के कारण जहाँ दबे स्वर में अधिकार की बात की, वहाँ उत्पीड़न और उपेक्षा के बढ़ते दौर में अलग सामुदायिक संगठनों द्वारा भी अपने अस्तित्व की स्वतंत्र घोषणा की।"[9]

निष्कर्षत -

स्त्री-अस्मिता और सशक्तिकरण की बात हमें 'समय-सापेक्ष' होकर करनी चाहिए। यानी स्त्रियों की अस्मिता पर सही ढंग से बात वेदों और पुराणों के आधार पर नहीं, आज की, वर्तमान की परिस्थितियों को देखते हुए स्त्रियों के लिए बनाए गए कानूनों के आधार पर करनी होगी। इसके साथ-ही-साथ उसके आर्थिक अधिकारों, भेदभाव की समाप्ति, हो रहे जुल्म की समाप्ति के विषय पर बात किए बिना और इन समस्याओं को समझे बिना इस समस्या का हल नहीं निकाला जा सकता और न ही इसके बिना महिलाओं के अस्मिता की बात आगे बढ़ सकती है। प्रसिद्द नारीवादी लेखिका शर्मा के शब्दों में –"एक औरत इन्सान की तरह इंसानियत और अस्मिता के साथ जी सके तो वही उसकी स्वतंत्रता होगी। एक औरत को केवल औरत होने के कारण कष्ट-प्रताड़ना को सहना न पड़े, बल्कि उसकी इच्छाओं गुणों को देखते हुए घर, समाज के परिवेश के अनुसार उसे वह सब कुछ मिलना चाहिए जो एक अच्छे नागरिक को मिलना चाहिए। एक औरत को यह आजादी होनी चाहिए कि वह जिस तरह से रहना चाहे रहे। अपनी जिंदगी की जिसमें ख़ुशी समझती है उसी में जिये...।"[10] अस्मिता और अस्तित्व का प्रश्न केवल भारतीय स्त्री को ही नहीं, बल्कि पूरी दुनिया की 'स्त्री' को भी उतना ही हैरान, परेशान कर रहा है। इसके एक नहीं अनेक कारण हैं। नारी शोषण की समस्या अब घर की दहलीज पार कर एक वैश्विक समस्या बन चुकी है। सारी दुनिया में शोषण की स्थितियाँ और गतियाँ भी समान हैं। इसलिए विश्व के किसी भी कोने में विकसित हुआ स्त्रीवादी चिंतन एवं स्त्री-अस्मिता को कायम करने के लिए उठाये गए कदम साझे महत्त्व के सन्दर्भ बन जाते हैं।

तात्पर्य यह हैं कि इन सबके लिए सर्वप्रथम चिंतन में बदलाव एवं पुरुष मानसिकता वाली स्त्रियों को भी

पितृसत्तात्मक संस्कारों से मुक्त होना चाहिए। स्त्री की मुक्ति से पहले पुरुष मानसिकता से मुक्ति आवश्यक है। समाज में प्रभुता संपन्न तत्वों की मानसिकता में बदलाव तभी संभव है जब नारी स्वयं चेतना संपन्न हों तथा अपने ऊपर होने वाले अत्याचार, अन्याय, उत्पीड़न व शोषण के विरुद्ध प्रतिरोधात्मक भाव रखती हों। सामंती वैचारिकता में नारी मुक्ति का कोई आधार नहीं था। किन्तु बदलती सामाजिक व्यवस्थाओं में स्त्री की लड़ाई व विरोध का सामुदायिक-वैचारिक आधार बन गया। मानवाधिकार की बढ़ती चेतना ने मानवीय अस्मिता की ओर और अधिक ध्यान आकृष्ट किया।

सन्दर्भ -

- डा. प्रभा खेतान, स्त्री उपेक्षिता (सीमोन द बोउवार की 'द सेके ड सेक्स' का हिन्दी अनुवाद) हिन्द पॉकेट बुक्स, पृष्ठ- 364 2002।
- रवीश कुमार, राजस्थान पत्रिका, 16 फरवरी 2013।
- डॉ. विनीता राय, मूल्य और मूल्य संक्रमण, पृष्ठ-172, अनिल प्रकाशन, इलाहाबाद, 1999।
- उपनिवेश में स्त्री, प्रभा खेतान, पृ.39
- डॉ. प्रीती सक्सेना , मानवअधिकार - नई दिशायें, पृष्ठ- 78, नई दिल्ली , 2010
- श्रृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, पृष्ठ 23
- प्रतिरोध के स्वर, डॉ. सुदेश बन्ना, राज पब्लिशिंग हाऊस जयपुर, 2009, पृष्ठ126
- भारतीय नारी, रमा शर्मा एवं एम. के. मिश्रा, पृष्ठ 31
- समय माजरा, मार्च 2001, पृष्ठ 20
- औरत के लिए औरत, नासिर शर्मा, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, 2007, पृष्ठ 201